त्रिजटा-सीता संवाद

चौपाई :

*** तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥ सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी॥1॥

भावार्थ:-

उसी रात त्रिजटा ने सीताजी के पास जाकर उन्हें सब कथा कह सुनाई। शत्रु के सिर और भुजाओं की बढ़ती का संवाद सुनकर सीताजी के हृदय में बड़ा भय हुआ॥1॥

*** मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥ होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता॥2॥

भावार्थ:-

(उनका) मुख उदास हो गया, मन में चिंता उत्पन्न हो गई। तब सीताजी त्रिजटा से बोलीं- हे माता! बताती क्यों नहीं? क्या होगा? संपूर्ण विश्व को दुःख देने वाला यह किस प्रकार मरेगा?॥2॥

*** रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥ मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही॥3॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी के बाणों से सिर कटने पर भी नहीं मरता। विधाता सारे चरित्र विपरीत (उलटे) ही कर रहा है। (सच बात तो यह है कि) मेरा दुर्भाग्य ही उसे जिला रहा है, जिसने मुझे भगवान् के चरणकमलों से अलग कर दिया है॥3॥

*** जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा॥ जेहिं बिधि मोहि दुख दुस्सह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए॥4॥

भावार्थ:-

जिसने कपट का झूठा स्वर्ण मृग बनाया था, वही दैव अब भी मुझ पर रूठा हुआ है, जिस विधाता ने मुझसे दुःसह दुःख सहन कराए और लक्ष्मण को कटु वचन कहलाए,॥4॥

*** रघुपति बिरह सबिष सर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी॥ ऐसेहुँ दुख जो राख मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना॥5॥

भावार्थ:-

जो श्री रघुनाथजी के विरह रूपी बड़े विषैले बाणों से तक-तककर मुझे बहुत बार मारकर, अब भी मार रहा है और ऐसे दुःख में भी जो मेरे प्राणों को रख रहा है, वही विधाता उस (रावण) को जिला रहा है, दूसरा कोई नहीं॥5॥

*** बहु बिधि कर बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की॥ कह त्रिजटा सुनु

राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी॥6॥
भावार्थ:-
कृपानिधान श्री रामजी की याद कर-करके जानकीजी बहुत प्रकार से विलापकर रही हैं। त्रिजटा ने कहा- हे राजकुमारी! सुनो, देवताओं का शत्रु रावण हृदय में बाण लगते ही मर जाएगा॥6॥
*** प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही॥7॥
भावार्थ:-
परन्तु प्रभु उसके हृदय में बाण इसलिए नहीं मारते कि इसके हृदय में जानकीजी (आप) बसती हैं॥7॥ छंद :
*** एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है। मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है॥ सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटाँ कहा।अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा॥
भावार्थ:-
वे यही सोचकर रह जाते हैं कि) इसके हृदय में जानकी का निवास है, जानकी के हृदय में मेरा निवास है और मेरे उदर में अनेकों भुवन हैं। अतः रावण के हृदय में बाण लगते ही सब भुवनों का नाश हो जाएगा। यह वचन सुनकर सीताजी के मन में अत्यंत हर्ष और विषाद हुआ देखकर त्रिजटा ने फिर कहा- हे सुंदरी! महान् संदेह का त्याग कर दो, अब सुनो, शत्रु इस प्रकार मरेगा-
दोहा :
*** काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान। तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान॥99॥
भावार्थ:-
सिरों के बार-बार काटे जाने से जब वह व्याकुल हो जाएगा और उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान छूट जाएगा, तब सुजान (अंतर्यामी) श्री रामजी रावण के हृदय में बाण मारेंगे॥99॥
चौपाई :
*** अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥ राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥1॥
भावार्थ:-
ऐसा कहकर और सीताजी को बहुत प्रकार से समझाकर फिर त्रिजटा अपने घर चली गई। श्री रामचंद्रजी के स्वभाव का स्मरण करके जानकीजी को अत्यंत विरह व्यथा उत्पन्न हुई॥1॥
*** निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँति। जुग सम भई सिराति न राती॥ करति बिलाप मनहिं मन भारी। राम बिरहँ जानकी दुखारी॥2॥
भावार्थ:-
वे रात्रि की और चंद्रमा की बहुत प्रकार से निंदा कर रही हैं (और कह रही हैं-) रात युग के

समान बड़ी हो गई, वह बीतती ही नहीं। जानकीजी श्री रामजी के विरह में दुःखी होकर मन ही मन भारी विलाप कर रही हैं॥2॥

*** जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥ सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥3॥

भावार्थ:-

जब विरह के मारे हृदय में दारुण दाह हो गया, तब उनका बायाँ नेत्र और बाहु फड़क उठे। शकुन समझकर उन्होंने मन में धैर्य धारण किया कि अब कृपालु श्री रघुवीर अवश्य मिलेंगे॥3॥

रावण का मूर्च्छा टूटना, राम-रावण युद्ध, रावण वध, सर्वत्र जयध्वनि

*** इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा। निज सारथि सन खीझन लागा। सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही॥4॥

भावार्थ:-

यहाँ आधी रात को रावण (मूर्च्छा से) जागा और अपने सारथी पर रुष्ट होकर कहने लगा- अरे मूर्ख! तूने मुझे रणभूमि से अलग कर दिया। अरे अधम! अरे मंदबुद्धि! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है!॥4॥

*** तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि धावा॥ सुनि आगवनु दसानन केरा। कपि दल खरभर भयउ घनेरा॥5॥

भावार्थ:-

सारथि ने चरण पकड़कर रावण को बहुत प्रकार से समझाया। सबेरा होते ही वह रथ पर चढ़कर फिर दौड़ा। रावण का आना सुनकर वानरों की सेना में बड़ी खलबली मच गई॥5॥

***जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी॥6॥

भावार्थ:-

वे भारी योद्धा जहाँ-तहाँ से पर्वत और वृक्ष उखाड़कर (क्रोध से) दाँत कटकटाकर दौड़े॥6॥

छंद :

*** धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा। अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा॥ बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो। चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तन ब्याकुल कियो॥

भावार्थ:-

विकट और विकराल वानर-भालू हाथों में पर्वत लिए दौड़े। वे अत्यंत क्रोध करके प्रहार करते हैं। उनके मारने से राक्षस भाग चले। बलवान् वानरों ने शत्रु की सेना को विचलित करके फिर रावण

को घेर लिया। चारों ओर से चपेटे मारकर और नखों से शरीर विदीर्ण कर वानरों ने उसको व्याकुल कर दिया॥

दोहा :

*** देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार। अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया बिस्तार॥100॥

भावार्थ:-

वानरों को बड़ा ही प्रबल देखकर रावण ने विचार किया और अंतर्धान होकर क्षणभर में उसने माया फैलाई॥100॥ छंद :

*** जब कीन्ह तेहिं पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥ बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच॥1॥

भावार्थ:-

जब उसने पाखंड (माया) रचा, तब भयंकर जीव प्रकट हो गए। बेताल, भूत और पिशाच हाथों में धनुष-बाण लिए प्रकट हुए॥1॥

*** जोगिनि गहें करबाल। एक हाथ मनुज कपाल॥ करि सद्य सोनित पान। नाचहिं करहिं बहु गान॥2॥

भावार्थ:-

योगिनियाँ एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में मनुष्य की खोपड़ी लिए ताजा खून पीकर नाचने और बहुत तरह के गीत गाने लगीं॥2॥

*** धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर॥ मुख बाइ धावहिं खान। तब लगे कीस परान॥3॥

भावार्थ:-

वे 'पकड़ो, मारो' आदि घोर शब्द बोल रही हैं। चारों ओर (सब दिशाओं में) यह ध्वनि भर गई। वे मुख फैलाकर खाने दौड़ती हैं। तब वानर भागने लगे॥3॥

*** जहँ जाहिं मर्कट भागि। तहँ बरत देखहिं आगि॥ भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरषै बालु॥4॥

भावार्थ:-

वानर भागकर जहाँ भी जाते हैं, वहीं आग जलती देखते हैं। वानर-भालू व्याकुल हो गए। फिर रावण बालू बरसाने लगा॥4॥

*** जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस॥ लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत॥5॥

भावार्थ:-

वानरों को जहाँ-तहाँ थकित (शिथिल) कर रावण फिर गरजा। लक्ष्मणजी और सुग्रीव सहित सभी वीर अचेत हो गए॥5॥

*** हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ॥ ऐहि बिधि सकल बल तोरि। तेहिं कीन्ह कपट बहोरि॥6॥

भावार्थ:-

हा राम! हा रघुनाथ पुकारते हुए श्रेष्ठ योद्धा अपने हाथ मलते (पछताते) हैं। इस प्रकार सब का बल तोड़कर रावण ने फिर दूसरी माया रची॥6॥

*** प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाए गहे पाषान॥ तिन्ह रामु घेरे जाइ। चहुँ दिसि बरूथ बनाइ॥7॥

भावार्थ:-

उसने बहुत से हनुमान् प्रकट किए, जो पत्थर लिए दौड़े। उन्होंने चारों ओर दल बनाकर श्री रामचंद्रजी को जा घेरा॥7॥

*** मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूँछ उठाइ॥ दहँ दिसि लँगूर बिराज। तेहिं मध्य कोसलराज॥8॥

भावार्थ:-

वे पूँछ उठाकर कटकटाते हुए पुकारने लगे, 'मारो, पकड़ो, जाने न पावे'। उनके लंगूर (पूँछ) दसों दिशाओं में शोभा दे रहे हैं और उनके बीच में कोसलराज श्री रामजी हैं॥8॥

छंद :

*** तेहिं मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही। जनु इंद्रधनुषअनेक की बर बारि तुंग तमालही॥ प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जयकरी। रघुबीर एकहिं तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी॥1॥

भावार्थ:-

उनके बीच में कोसलराज का सुंदर श्याम शरीर ऐसी शोभा पा रहा है, मानो ऊँचे तमाल वृक्ष के लिए अनेक इंद्रधनुषों की श्रेष्ठ बाढ़ (घेरा) बनाई गई हो। प्रभु को देखकर देवता हर्ष और विषादयुक्त हृदय से 'जय, जय, जय' ऐसा बोलने लगे। तब श्री रघुवीर ने क्रोध करके एक ही बाण में निमेषमात्र में रावण की सारी माया हर ली॥1॥

*** माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे। सर निकर छाड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे॥ श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं। सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं॥2॥

भावार्थ:-

माया दूर हो जाने पर वानर-भालू हर्षित हुए और वृक्ष तथा पर्वत ले-लेकर सब लौट पड़े। श्री रामजी ने बाणों के समूह छोड़े, जिनसे रावण के हाथ और सिर फिर कट-कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े। श्री रामजी और रावण के युद्ध का चरित्र यदि सैकड़ों शेष, सरस्वती, वेद और कवि अनेक कल्पों तक गाते रहें, तो भी उसका पार नहीं पा सकते॥2॥

दोहा :

*** ताके गुन गन कछु कहे जड़मति तुलसीदास। जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास॥101 क॥

भावार्थ:-

उसी चरित्र के कुछ गुणगण मंदबुद्धि तुलसीदास ने कहे हैं जैसे मक्खी भी अपने पुरुषार्थ के अनुसार आकाश में उड़ती है॥101 (क)॥

*** काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस। प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस॥101 ख॥

भावार्थ:-

सिर और भुजाएँ बहुत बार काटी गईं। फिर भी वीर रावण मरता नहीं।प्रभु तो खेल कर रहे हैं, परन्तु मुनि, सिद्ध और देवता उस क्लेश को देखकर (प्रभु को क्लेश पाते समझकर) व्याकुल हैं॥101 (ख)॥

चौपाई :

*** काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥ मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा॥1॥

भावार्थ:-

काटते ही सिरों का समूह बढ़ जाता है, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है। शत्रु मरता नहीं और परिश्रम बहुत हुआ तब श्री रामचंद्रजी ने विभीषण की ओर देखा॥1॥

*** उमा काल मर जाकीं ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥ सुनु सरबग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक॥2॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! जिसकी इच्छा मात्र से काल भी मर जाता है, वही प्रभु सेवक की प्रीति की परीक्षा ले रहे हैं। (विभीषणजी ने कहा-) हे सर्वज्ञ! हे चराचर के स्वामी! हे शरणागत के पालन करने वाले! हे देवता और मुनियों को सुख देने वाले! सुनिए-॥2॥

*** नाभिकुंड पियूष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें॥ सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला॥3॥

भावार्थ:-

इसके नाभिकुंड में अमृत का निवास है। हे नाथ! रावण उसी के बल पर जीता है। विभीषण के वचन सुनते ही कृपालु श्री रघुनाथजी ने हर्षित होकर हाथमें विकराल बाण लिए॥3॥

*** असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना॥ बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू॥4॥

भावार्थ:-

उस समय नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे। बहुत से गदहे स्यार और कुत्ते रोने लगे। जगत् के दुःख (अशुभ) को सूचित करने के लिए पक्षी बोलने लगे। आकाश में जहाँ-तहाँ केतु (पुच्छल तारे) प्रकट हो गए॥4॥

*** दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रबि उपरागा॥ मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी॥5॥

भावार्थ:-

दसों दिशाओं में अत्यंत दाह होने लगा (आग लगने लगी) बिना ही पर्व (योग) के सूर्यग्रहण होने लगा। मंदोदरी का हृदय बहुत काँपने लगा। मूर्तियाँनेत्र मार्ग से जल बहाने लगीं॥5॥

छंद :

*** प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही। बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही॥ उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए। सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए॥

भावार्थ:-

मूर्तियाँ रोने लगीं, आकाश से वज्रपात होने लगे, अत्यंत प्रचण्ड वायु बहने लगी, पृथ्वी हिलने लगी, बादल रक्त, बाल और धूल की वर्षा करने लगे। इस प्रकार इतने अधिक अमंगल होने लगे कि उनको कौन कह सकता है? अपरिमित उत्पात देखकर आकाश में देवता व्याकुल होकर जय-जय पुकार उठे। देवताओं को भयभीत जानकर कृपालु श्री रघुनाथजी धनुष पर बाण सन्धान करने लगे।

दोहा :

*** खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस। रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस॥102॥

भावार्थ:-

कानों तक धनुष को खींचकर श्री रघुनाथजी ने इकतीस बाण छोड़े। वे श्री रामचंद्रजी के बाण ऐसे चले मानो कालसर्प हों॥102॥

चौपाई :

*** सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥ लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा॥1॥

भावार्थ:-

एक बाण ने नाभि के अमृत कुंड को सोख लिया। दूसरे तीस बाण कोप करके उसके सिरों और भुजाओं में लगे। बाण सिरों और भुजाओं को लेकर चले। सिरों और भुजाओं से रहित रुण्ड (धड़) पृथ्वी पर नाचने लगा॥1॥

*** धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा॥ गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥2॥

भावार्थ:-

धड़ प्रचण्ड वेग से दौड़ता है, जिससे धरती धँसने लगी। तब प्रभु ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। मरते समय रावण बड़े घोर शब्द से गरजकर बोला- राम कहाँ हैं? मैं ललकारकर उनको युद्ध में मारूँ!॥2॥

*** डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥ धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई॥3॥

भावार्थ:-

रावण के गिरते ही पृथ्वी हिल गई। समुद्र, नदियाँ, दिशाओं के हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे। रावण धड़ के दोनों टुकड़ों को फैलाकर भालू और वानरों के समुदाय को दबाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा॥3॥

*** मंदोदरि आगें भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा॥ प्रबिसे सब निषंग महुँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई॥4॥

भावार्थ:-

रावण की भुजाओं और सिरों को मंदोदरी के सामने रखकर रामबाण वहाँ चले, जहाँ जगदीश्वर श्री रामजी थे। सब बाण जाकर तरकस में प्रवेश कर गए। यह देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए॥4॥

*** तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन॥ जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा॥5॥

भावार्थ:-

रावण का तेज प्रभु के मुख में समा गया। यह देखकर शिवजी और ब्रह्माजी हर्षित हुए। ब्रह्माण्डभर में जय-जय की ध्वनि भर गई। प्रबल भुजदण्डों वाले श्री रघुवीर की जय हो॥5॥

*** बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥6॥

भावार्थ:-

देवता और मुनियों के समूह फूल बरसाते हैं और कहते हैं- कृपालु की जय हो, मुकुन्द की जय हो, जय हो!॥6॥

छंद :

*** जय कृपा कंद मुकुंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो। खल दल बिदारनपरम कारन कारुनीक सदा बिभो॥ सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही। संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही॥1॥

भावार्थ:-

हे कृपा के कंद! हे मोक्षदाता मुकुन्द! हे (राग-द्वेष, हर्ष-शोक, जन्म-मृत्यु आदि) द्वंद्वों के हरने वाले! हे शरणागत को सुख देने वाले प्रभो! हे दुष्ट दल को विदीर्ण करने वाले! हे कारणों के भी परम कारण! हे सदा करुणा करने वाले! हे सर्वव्यापक विभो! आपकी जय हो। देवता हर्ष में भरे हुए पुष्प बरसाते हैं घमाघम नगाड़े बज रहे हैं। रणभूमि में श्री रामचंद्रजी के अंगों ने बहुत से कामदेवों की शोभा प्राप्त की॥1॥

*** सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं। जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥ भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने। जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥2॥

भावार्थ:-

सिर पर जटाओं का मुकुट है, जिसके बीच में अत्यंत मनोहर पुष्प शोभा दे रहे हैं। मानो नीले पर्वत पर बिजली के समूह सहित नक्षत्र सुशोभित हो रहे हैं। श्री रामजी अपने भुजदण्डों से बाण और धनुष फिरा रहे हैं। शरीर पर रुधिर के कण अत्यंत सुंदर लगते हैं। मानो तमाल के वृक्ष पर बहुत सी ललमुनियाँ चिड़ियाँ अपने महान् सुख में मग्न हुई निश्चल बैठी हों॥2॥

दोहा :

*** कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद। भालु कीस सब हरषे जय सुख धाम मुकुंद॥103॥

भावार्थ:-

प्रभु श्री रामचंद्रजी ने कृपा दृष्टि की वर्षा करके देव समूह को निर्भय कर दिया। वानर-भालू सब हर्षित हुए और सुखधाम मुकुन्द की जय हो, ऐसा पुकारने लगे॥103॥